ISSN 2278-554 X Lamahi

लमही

जनवरी-जून (संयुक्तांक) 2025

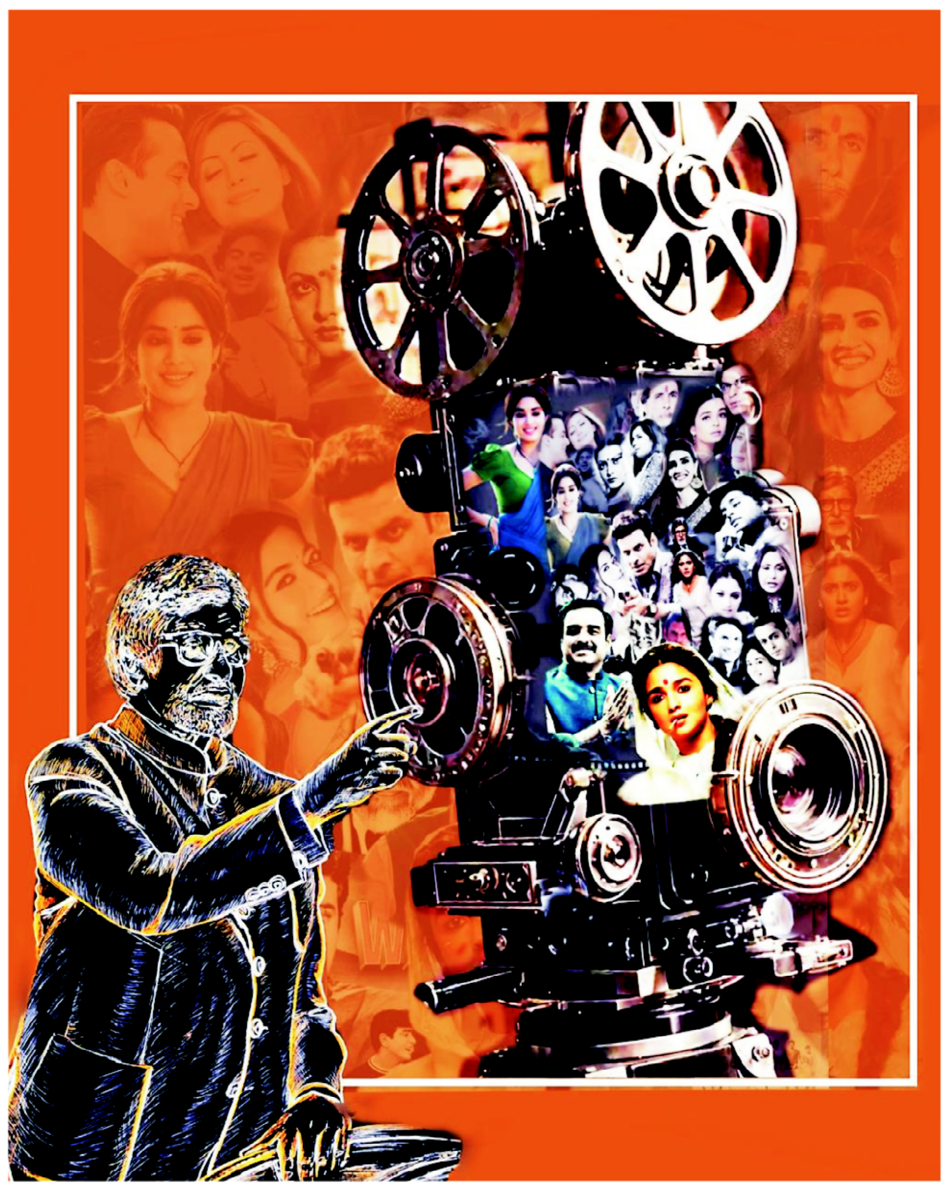

सिनेमा के पिछले 25 साल

₹ 100/-

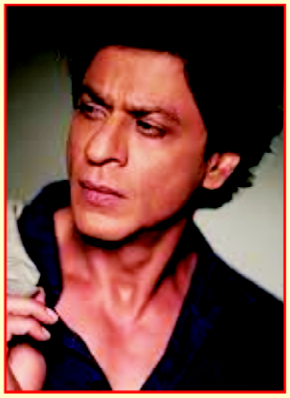

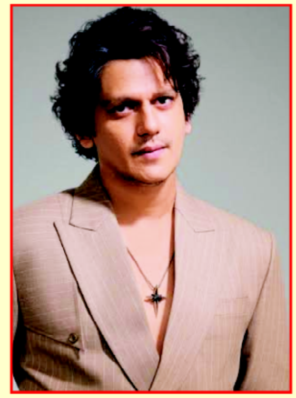

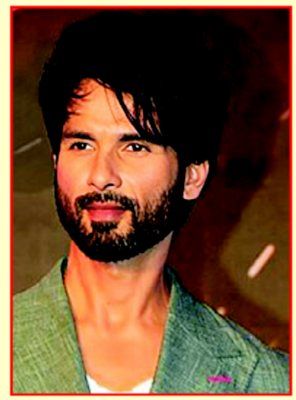

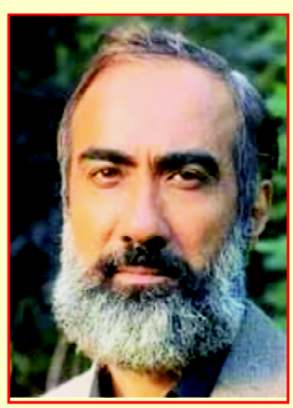

लमही

वर्ष: 17 ● अंक: 3–4 ● जनवरी–जून 2025

इस अंक में

इस अंक में ......

● सम्पादकीय 5

1. चौथाई सदी का अंतरराष्ट्रीय सिनेमा —**विजय शर्मा** 7
2. सिनेमा की दूसरी पारी —**राजुला शाह** 14
3. चार सौ तीस फिल्में या चार सौ बीस फिल्में —**ख्वाजा अहमद अब्बास** 20
4. 2000 से 2025 का भारतीय सिनेमा —**प्रकाश हिंदुस्तानी** 24
5. हिन्दी सिनेमा के पिछले पच्चीस साल —**अजय ब्रह्मात्मज** 26
6. कारवाँ गुजर गया —**यूनुस खान** 39
7. सार्थक सिनेमा के पच्चीस वर्ष —**मृदुला पण्डित** 45
8. 21वीं सदी में हिन्दी सिनेमा : परंपरा और प्रयोग की दुनिया —**किरन सूद** 50
9. रवीन्द्र नाथ टैगोर और भारतीय सिनेमा —**हार्दिक भट्ट** 57
10. समानांतर सिनेमा का सबसे बड़ा नायक —**वैभव सिंह** 66
11. श्याम बेनेगल न होते तो हिंदी सिनेमा की परिभाषा कुछ और होती —**ललित मोहन जोशी** 71
12. भारतीय फिल्म कलाकारों की जन्म–शताब्दियाँ —**जवरी मल पारख** 74
13. दुख दृश्य से अधिक गहरा होता है **(क्रिस्टफ किरलोव्स्की से गौतम चटर्जी की बातचीत)** 92
14. गौतम घोष : वृहत्तर सामाजिक सरोकारों और मानवीय संवेदनाओं का फिल्मकार —**शर्मिला जालान (वोहरा)** 95
15. मैं अनुभूति की ओर से देखती हूँ चरित्र को **(स्मिता पाटिल से गौतम चटर्जी की बातचीत)** 103
16. जिज्ञासु स्वभाव का हूँ **(आमिर खान से अजय ब्रह्मात्मज की बातचीत)** 106
17. वास्तविकता कुछ और है **(डॉ. चन्द्रप्रकाश द्विवेदी की अजय ब्रह्मात्मज से बातचीत)** 112
18. फिल्म संपादन भावनात्मक सातत्य, तकनीकी कौशल और समन्वय की कारीगरी है **(अनुराधा सिंह से रवीन्द्र कात्यायन की बातचीत)** 116
19. **परिचर्चा :** देवीप्रसाद मिश्र, शोमा चटर्जी, प्रो. आनंद कुमार, मनमोहन चड्ढा, अनंग देसाई, राजेन्द्र गुप्ता, अजय ब्रह्मात्मज, जयनारायण प्रसाद, शशांक दुबे, हूबनाथ पांडेय, संजय शुभंकर, अशोक मिश्र, शक्ति सिंह, अविनाश दास, ललित परिमू, अजय रोहिल्ला, अबनेर रेजगोल्ड, आशीष कुमार सिंह, अरुण सुकुमार, अभिमन्यु चौधरी, अनुराग गोस्वामी, श्लोक शर्मा, रूपम मिश्र, भूमिका द्विवेदी अश्क, देवमणि पांडेय, पुनर्वसु 123–177
20. प्रतिरोध का सिनेमा —**रिज़वानुल हक़** 178
21. भविष्य का सिनेमा प्रतिरोध का सिनेमा होगा —**दीप भट्ट** 184
22. लोकप्रिय हिन्दी सिनेमा में मर्दानगी के गिरते स्वरूप —**सौम्या बैजल** 189
23. विभाजन की त्रासदी और हिन्दी सिनेमा —**सुनीता कुमारी** 193

24. हिन्दी सिनेमा में वैश्वीकरण का प्रभाव —शशि पांडेय 197
25. आत्मा और शरीर की तरह साहित्य और सिनेमा —हरगोविन्द पुरी 201
26. क्षेत्रीय सिनेमा : विविधता, परम्परा और आधुनिकता का संगम —रवींद्र कात्यायन 204
27. छोटी फिल्मों का बाड़ा संसार —पीयूष कुमार 214
28. प्रयोग कि जमीन पर बदलते समय पर बदलते समय का सिनेमा —सुदीप सोहनी 226
29. हिन्दी फिल्मों के संगीत का सफर —बिभाष कुमार श्रीवास्तव 231
30. भारत में ओटीटी और यूट्यूब मूवी स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म का उदय —राहुल आहूजा 236
31. तकनीक के साथ बदलता हिन्दी सिनेमा —तेजस पुनिया 242
32. हिन्दी सिनेमा के नवाचार : विविध पक्ष —डा. रक्षा गीता 247
33. दाम्पत्य सम्बंधों की जटिलता पर एक दृष्टि —अंजू शर्मा 254
34. इक्कीसवीं सदी में बायोपिक और डाक्यूमेंट्री —विजय पण्डित 258
35. दास्तान—ए—नायिका बनाम हिन्दी सिनेमा के पच्चीस बरस —डा. सुजाता मिश्र 263
36. बालीवुड में जातीय पहचान का सिनेमा —राकेश कुमार पटेल 268
37. सिने अध्ययन के नए बीज शब्द : अंतर माध्यमिकता व क्षेत्रीयता —प्रभात कुमार, डॉ. रविकान्त 279
38. हिन्दी सिनेमा में धर्म : जागो भई भोर —डा. मलखान सिंह 284
39. सिनेमा में मूक आवाजों का बढ़ता दखल —अनुज कुमार 289
40. अभिनय का अमानवीय दण्ड —रत्नेश कुमार 301
41. **फिल्म समीक्षा/वेब सीरीज** 306—354
- नट सम्राट—**सत्यदेव त्रिपाठी**
- हेल्लारो —**सत्यदेव त्रिपाठी**
- जोकर —**सत्यदेव त्रिपाठी**
- एनिमल—**शोमा चटर्जी**
- महाराज—**मेधा नैलवाल**
- लंच बाक्स—**प्रभात कुमार**
- इन गलियों में—**अवंतिका सिंह**
- भूलन द मेज—**डा.संजू साहू पूनम**
- बंदिश बैण्डिट्स—**रूपम मिश्र**
- बंदिश बैण्डिट्स —**वरुण मिश्र**
- नो मीन्स नो—**धीरज सार्थक**

42. संदर्भ : बीते ढाई दशक में हिन्दी सिनेमा पर किताबों का सफर —जाहिद खान 355

आवरण प्रथम एवं चतुर्थ : पूनम किशोर

प्रधान संपादक* ☐ विजय राय
संपादक* ☐ ऋत्विक राय
संयुक्त संपादक* ☐ वत्सल कक्कड़

इस अंक का संपादन* ☐ विजय राय ☐ ऋतिका राय

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय संपर्क

3/343, विवेक खण्ड, गोमती नगर लखनऊ—226010

ईमेल : vijairai.lamahi@gmail.com, मो0 : **9454501011**

इस अंक का मूल्य : 100/— रुपये मात्र

''लमही का वेब अंक आप **Not Nul**
(www.notnul.com)
पर पढ़ सकते हैं।''

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे त्रैमासिक पत्रिका 'लमही' और उसके संपादक—मण्डल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ होगा

''लमही'' की स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक मंजरी राय के लिए श्रीमंत शिवम् आर्ट्स, 211 पाँचवीं गली, निशातगंज, लखनऊ से मुद्रित तथा 3/343, विवेक खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ—226010 से प्रकाशित।

संपादक—ऋत्विक राय*

वर्ष: 17 ● अंक: 3—4 ● जनवरी—जून (संयुक्तांक) 2025

*सभी अवैतनिक

संपादकीय

जन माध्यमों में सहज और सरल सम्प्रेषण के लिए मैं सिनेमा को अब तक का अव्वल जरिया मानता रहा हूं। हमने जुलाई–सितम्बर 2010 की 'लमही' को सिनेमा विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया था। अत्यंत अल्प समय में प्रश्नगत विशेषांक ठीक–ठाक सामग्री के साथ प्रकाशित हो गया था। 'इण्डिया टुडे' (हिन्दी) ने इस विशेषांक की नोटिस लेते हुए लिखा था–'सही मायने में यह सिनेमा का एक पूर्णांक है, जिसमें सब कुछ है। विस्तृत फलक लिए सिनेमा के अंग–प्रत्यंग के मौन को मुखरित करता हुआ। बहुत परिश्रम से संपादित इस विशेषांक के लिए विजय राय और ऋत्विक राय को साधुवाद। काश! हमारे फिल्म इण्डस्ट्री के अंग्रेजी दां लोग एक बार इसे पूरी तरह पढ़ पाते।' 'लमही' के इस विशेषांक की प्रिंटेड प्रतियां अब समाप्त हो गई हैं, किन्तु WWW.NOTNUL.COM पर ऑन लाइन उपलब्ध हैं। पिछले दो तीन वर्षों से अपनी सुपुत्री ऋतिका राय से एक और सिनेमा विशेषांक निकालने की चर्चा होती रही है। ऋतिका ने जे. एन.यू. से समाज शास्त्र में परा स्नातक करने क उपरांत भारतीय फिल्म एवं टेलीविजन संस्थान, पुणे से संपादन कला में दक्षता प्राप्त की और मुम्बई के पोस्ट प्रोडक्शन हाउसेस यथा 'प्राइम फोकस' एवं 'पिक्सियन' में बतौर फिल्म एडीटर कार्य करना शुरू किया। सम्प्रति वह न्यूयार्क (अमेरिका) में फ्रीलांस फिल्म एडीटर के रूप में कार्यरत है।

फिल्म से जुड़े कई मित्रों ने मुझे यह मशविरा दिया कि पिछले पच्चीस बरसों में सिनेमा बहुत तेज़ी से बदला है, लिहाज़ा इस बदलाव की तस्वीर खींचकर उसकी पड़ताल की जानी चाहिए बहरहाल काम शुरू किया और वह लगातार फैलने लगा। हर विशेषांक की तरह कुछ लोग सहयोग का आश्वासन देकर पतली गली से निकलते गये। निर्धारित समय में काम समाप्त न कर पाने के कारण मैं चीजों को समेटता ही रहा। जो छूट रहा था उसे छूटने दे रहा था। जैसे–तैसे ये काम पूरा कर आप सभी के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूं। हर विशेषांक मेरे लिए एक नया तजुर्बा होता रहा है। अब आप पढ़कर बताइयेगा कि सिनेमा विशेषांक कुछ काम लायक बन पाया है या नहीं। फिल्म विशेषज्ञ, समीक्षकों, और शोधार्थियों आदि से जो सामग्री मिल पायी, उससे अंतरराष्ट्रीय सिनेमा, भारतीय सिनेमा, हिन्दी सिनेमा, क्षेत्रीय सिनेमा आदि के परिदृश्य को उकेरने और उसकी पड़ताल करने की कोशिश कितनी सफल हुई है, ये तो हमारे सुधी और गुणी पाठक ही बता पायेंगे। निहायत छोटे, मझोले और ठीक–ठाक आकार प्रकार में की गई कतिपय बातचीत इस अंक की थीम पर संतोषजनक तरीके से प्रकाश डालती है। पोलिश सिनेकार क्रिस्टफ किरलोव्स्की अभिनेत्री स्मिता पाटिल, अभिनेता आमिर खान, फिल्म निर्देशक डॉ. चन्द्र प्रकाश द्विवेदी और फिल्म एडीटर अनुराधा सिंह से बातचीत इस अंक की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

विजय शर्मा और राजुला शाह ने सिनेमा के अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य को गहनता से विवेचित किया है। भारतीय सिनेमा के 25 सालों को लेकर प्रकाश हिन्दुस्तानी ने अपनी सारगर्भित टिप्पणियों से अपने आलेख को मुकम्मल किया है। विख्यात फिल्म समालोचक अजय ब्रह्मात्मज ने काफी विस्तार से हिन्दी सिनेमा के पच्चीस सालों को मूल्यांकित किया है। प्रवृत्तियों से लेकर हर महत्वपूर्ण फिल्म का जिस तरह से उन्होंने उल्लेख किया है वह एक संक्षिप्त इतिहास सा बन गया है। युनूस खान, मृदुला पण्डित, किरन सूद के उल्लेखनीय आलेखों के अलावा दस्तावेज़ कालम के अंतर्गत ख़्वाज़ा अहमद अब्बास का 'चार सौ तीस फिल्में या चार सौ बीस फिल्में' मजमून एक महत्वपूर्ण आलेख है।

समानांतर फिल्मों के जनक श्याम बेनेगल पर वैभव सिंह का विवेचनात्मक लेख उनके पूरे काम की महत्ता पर रोशनी डालता है। जवरी मल पारख ने विगत पांच वर्षों में सिनेमा से जुड़ी शख़्सियतों जिनकी जन्म शताब्दियां हुई हैं, पर बेहतरीन आलेख लिखा है।

फिल्मकार गौतम घोष पर पूर्णता में लिखा गया शर्मिला जालान (वोहरा) का आलेख एक लघु विनिबंध सा है। हमारा परिचर्चा खण्ड बहुत अलग तरह से आब्जर्वेशन की नई दृष्टि विकसित करने की गरज़ से काफी कुछ सहायक होगा। विभिन्न विधाओं और क्षेत्रों के विशेषज्ञों से कई सवाल किये गये हैं, जिनके उत्तर उन्होंने अपने ज्ञान एवं तजुर्बे के आधार पर दिए हैं जो सिनेमा प्रेमियों और शोधार्थियों के लिए बहुत उपयोगी होगा। विभाजन की त्रासदी से लेकर प्रतिरोध के सिनेमा पर सुनीता कुमारी, दीप भट्ट और रिज़वानुल हक़ के आलेख पठनीय हैं। जाहिद खान ने पिछले पच्चीस वर्षों में हिन्दी सिनेमा पर लिखी गई चर्चित किताबों पर अपनी महत्वपूर्ण राय जाहिर की है। कुछ वेब सीरीज और फिल्मों पर विशेषज्ञों द्वारा लिखी गई समीक्षाएं हमें फिल्मों को देखने और उसके परीक्षण/मूल्यांकन की सलाहियत प्रदान करता है। विजय पण्डित, युनुस खान, रवीन्द्र कात्यायन, पीयूष कुमार, हरगोविन्द पुरी, हार्दिक भट्ट, सुदीप सोहनी, बिभाष कुमार श्रीवास्तव, राहुल आहूजा, अंजू शर्मा, प्रभात कुमार–रविकांत, रत्नेश कुमार, तेजस पुनिया और सौम्या बैजल आदि ने हमारे आग्रह का मान रखते हुये परिश्रम से अत्यंत महत्वपूर्ण आलेख और टिप्पणियां लिखीं हैं, जो ध्यातव्य हैं।

महान कथाकार एवं उपन्यासकार **मुंशी प्रेमचन्द** ने कभी फिल्मों की ओर रूख किया था। उन्होंने वहां जाकर जो अनुभव किया, वह आज भी प्रासंगिक है। वे कहते हैं कि 'साहित्य ऊँचे भाव, पवित्र भाव अथवा सुंदरम् को सामने लाता है। पारसी ड्रामें, होली और कजली, बारहमासी, चित्रपट आदि साहित्य नहीं है, क्योंकि इन्हें सुरूचि से कोई प्रयोजन नहीं है। सिनेमा में वही तमाशे खूब चलते हैं, जिनमें निम्न भावनाओं की विशेष तृप्ति हो। साहित्य दूध होने का दावेदार है, सिनेमा ताड़ी या शराब की भूख को शांत करता है। साहित्य जनरूचि का पथ प्रदर्शक होता है, उसका अनुगामी नहीं। सिनेमा जनरूचि के पीछे चलता है। डायरेक्टर ऊंचे भावों से भरी फिल्म बनाकर हानि उठाता है, लेकिन जब वह बाजारू ढ़ंग की फिल्म बनाता है, तो उसे खूब मुनाफा होता है। साहित्य और सिनेमा का मेल कठिन है। हिन्दी के कई साहित्यकार सिनेमा की उपासना में लगे हैं। देखना है कि सिनेमा इन्हें बदल देता है या ये सिनेमा की काया पलट कर देते हैं।' फिल्मकार **श्याम बेनेगल** से मैंने एक बार सवाल किया था कि साहित्य को सिनेमा में ढालने की चुनौती और उसकी प्रक्रिया के बारे आपके विचार क्या हैं, तो उनका जवाब था कि 'साहित्य पर आधारित फिल्में दृश्य श्रव्य माध्यम में रचना के कथ्य को सम्पूर्णता से स्पष्ट नहीं कर सकती। उन्हें एक मौलिक रचना बनना पड़ेगा एक ऐसी अनुभूति के साथ जो सिनेमा के माध्यम के अनुरूप हो। सिनेमा का अनुभव और किसी पुस्तक का पाठ दोनों को एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। पुस्तक से किसी फिल्म का निर्माण एक रचना से ऊपर उठकर उस रचना को नये रूप में जन्म देना है न कि उसे परिभाषित करना, उसका दृश्यानुवाद करना।'

'लमही' के इस अंक में सभी फोटोग्राफ्स गूगल से साभार लिए गये हैं। इस विशेषांक के माध्यम से हमने बहुतेरी जिज्ञासाओं और प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए काफी कुछ खंगालने की कोशिश की है। सब कुछ जानने में हम कितना सफल हुए हैं यह तो आप ही बता सकते हैं। आपके अभिमत की प्रतीक्षा रहेगी।■

चौथाई सदी का अंतरराष्ट्रीय सिनेमा

■ **विजय शर्मा**

इक्कीसवीं सदी का पच्चीसवाँ साल चल रहा है। आज भी फिल्म मनोरंजन का सस्ता और लोकप्रिय माध्यम है। विज्ञान की उन्नति से फिल्म निर्माण–प्रदर्शन से जुड़े उपकरणों ने फिल्में बनाना एवं देखना आसान कर दिया है। ऐनिमेशन और वीएफएक्स (विजुअल इफैक्ट्स) में भी अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई है। आज डिजिटल उपकरणों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाना–ले जाना सरल है। सेल्युलाइड की बनिस्बत डिजिटल से फिल्म का निर्माण, उसकी एडिटिंग, उसका संरक्षण, प्रदर्शन की संभावनाएँ बढ़ गई हैं। डबिंग, सबटाइटिल की साध्यता ने फिल्म की पहुँच दर–दराज तक कर दी है। अन्य भाषाओं की फिल्म को दर्शक के लिए सुलभ कर दिया है। ओटीटी की उपलब्धता ने प्रदर्शन सरल कर दिया है। दुनिया के तकरीबन हर देश और हर भाषा में फिल्में बन रही हैं। भारत में प्रतिवर्ष हजार से ऊपर फिल्में बनती हैं। नए–नए इंडिपेंडेंट फिल्ममेकर आगे आ रहे हैं और अर्थपूर्ण सिनेमा बना रहे हैं। इतना ही नहीं छोटे बजट की फिल्में प्रतियोगिताओं के लिए आगे आ रही हैं और सम्मानित हो रही हैं। सार्थक सिनेमा खालिस मनोरंजन नहीं है।

ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, बायोपिक, जासूसी, रहस्य–रोमांच, ब्लैक कामेडी, साइंस–फिक्शन, रॉम–कॉम, युद्ध, आदिवासी, स्त्री केंद्रित, रोड मूवीज, ओह! अनगिनत श्रेणियों में सिनेमा बनता है। बाक्स आफिस की सफलता मेरे लिए मायने नहीं रखती है, अच्छी फिल्म की परिभाषा लोगों के लिए भिन्न हो सकती है। गुणवत्ता की दृष्टि से सिनेमा को मुख्य रूप से तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है, अच्छी, मध्यम एवं निम्न। अच्छी फिल्म आपकी सोच में इजाफा कर आपको चिंतन–मनन के लिए प्रेरित करती है, आपको जागरुक करती है, संवेदनशील बनाती है। मध्यम स्तर की फिल्म ठीक ठाक है, मनोरंजन करती है, ज्यादा दिमाग लगाने की मांग नहीं करती है। हालाँकि खराब फिल्म में भी निर्देशक की अकुशलता, अभिनेताओं की असक्षमता अथवा कमजोर कहानी, गीत–संगीत के भौंडापन के बावजूद बनाने वालों की मेहनत

परिचय : डा. विजय शर्मा

डा. विजय शर्मा, समालोचक, सिनेमा विशेषज्ञ, विश्व साहित्य अध्येता, पूर्व एसोशिएट प्रोफेसर, लायला कालेज आफ एडुकेशन, जमशेदपुर–पूर्व विजिटिंग प्रोफेसर, हैदराबाद सेंट्रल यूनिवर्सिटी तथा एकेडमिक स्टाफ कालेज, राँची कई हिन्दी और इंग्लिश पत्रिकाओं में सह–संपादन–अतिथि संपादन 'कथादेश' दो अंक–'हिंदी साहित्य ज्ञानकोश' में सहयोग–प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं में कहानी, आलेख, पुस्तक–समीक्षा, फिल्म–समीक्षा, अनुवाद प्रकाशित–आकाशवाणी से पुस्तक–फिल्म समीक्षा, कहानियाँ, रूपक तथा वार्ता प्रसारित–कई फिल्म फेस्टिवल में जूरी सदस्य –14 वर्षों से साहित्य, सिनेमा, कला संस्था 'सृजन संवाद' का संचालन–फिल्म सोसायटी 'सेल्युलाइड' की आजीवन सदस्य–फिल्म क्रिटिक सर्किल आफ इंडिया की सदस्य–अमर उजाला में 'विश्व सिनेमा की जादूई दुनिया' तथा 'विश्व साहित्य का आकाश' शीर्षक से ब्लाग लेखन।

–प्रकाशित सिने–पुस्तकें : वाल्ट डिज्नी : ऐनीमेशन का बादशाह (वाणी प्रकाशन) विश्व सिनेमाः कुछ अनमोल रत्न (अनुज्ञा बुक्स) स्त्री, साहित्य और विश्व सिनेमा (संवाद प्रकाश) सिनेमा और साहित्य : नाजी यातना शिविरों की त्रासद गाथा (वाणी प्रकाशन) विश्व सिनेमा में स्त्री (संपादन, अनुज्ञा बुक्स) आर्सन वेल्स : निर्देशन की जिद, काँटों का ताज (ई–बुक, (ई–बुक, नॉटनल.काम) ऋतुपर्ण घोष : पोर्ट्रेट आफ ए डायरेक्टर (35 पन्नों की ई–बुक, नॉटनल.काम) सत्यजित राय का अपूर्व संसार (संपादन) भाग 1–2 (पुस्तकनामा, किंडल, ई–बुक भी उपलब्ध) सिनेमैटिक चिंतन (पुस्तकनामा) नॉटनल.काम ई–बुक भी उपलब्ध महादेशों का सिनेमा (पुस्तकनामा) नॉटनल.काम ई–बुक भी उपलब्ध परदे के पीछे : सिने–जगत के 21 जादुई हाथ (ई–बुक, नॉटनल.काम) परदे के पीछे : सिने–जगत के जादूई हाथ (अनन्य प्रकाशन)

–प्रकाशित नोबेल साहित्य : अपनी धरती, अपना आकाशरू नोबेल के मंच से (द्वितीय संस्करण, संवाद प्रकाशन) स्त्री साहित्य और नोबेल पुरस्कार (द्वितीय संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ) क्षितिज के उस पार से (भारतीय ज्ञानपीठ) नोबेल पुरस्कार : एशियाई संदर्भ (आधार प्रकाशन) वर्जित संबंध : नोबेल साहित्य में (अनुज्ञा बुक्स) मृत्यु : विश्व साहित्य की एक यात्रा (अनुज्ञा बुक्स)

–अन्य विषय पर पुस्तकें : अफ्रो–अमेरिकन साहित्य : स्त्री स्वर (वाणी प्रकाशन) सात समुंदर पार से...(प्रवासी साहित्य विश्लेषण, यश पब्लिकेशन्स) देवदार के तुंग शिखर से (अनुज्ञा बुक्स) हिंसा, तमस एवं अन्य साहित्यिक आलेख (यश पब्लिकेशन्स) बलात्कार, समलैंगिकता एवं अन्य साहित्यिक आलेख (अनुज्ञा बुक्स) तीसमार खाँ (कहानी संग्रह, अनन्य प्रकाशन) साहित्य में रिश्ते (नॉटनल.काम ई–बुक) साहित्य में रिश्ते (पुस्तकनामा) कथा मंजूषाय विश्व की श्रेष्ठ 25 कहानियाँ (अनुवाद, अनुज्ञा बुक्स) लौह शिकारी (अनुवाद, टाटा इनहाउस पब्लिकेशन्स) महान बैले नृत्यांगनाएँ (अनुवाद, संवाद प्रकशन) मैडम बोवरी (संक्षिप्त संस्करण, पुस्तकनामा)–दो पाण्डुलिपि प्रकाशनाधीन।

तो वहाँ भी होती है। आपको सिनेमा की भाषा का थोड़ा–बहुत ज्ञान है, तो आपको तत्काल पता चल जाता है, फिल्म कैसी है। प्रशिक्षण, स्वाध्याय या अभ्यास द्वारा साहित्य एवं अन्य विषयों की भाँति सिनेमा के व्याकरण की जानकारी आवश्यक है।

सिनेमा के प्रारंभ से अब तक कितनी फिल्में बनी हैं, इसका केवल अनुमान लगाया जा सकता है। दुनिया में इतनी बड़ी संख्या में फिल्में बनती हैं, सबको देखना न तो अपेक्षित है और न ही संभव। अतः इस सदी के पहले चौथाई भाग में कई हिन्दी, मलयालम, बाँग्ला, देशी–विदेशी फिल्में देखीं,जो अच्छी लगीं, उन्हीं में से कुछ को साझा करने का विचार है। यह मेरी पसंद है, आवश्यक नहीं आपको भी जंचे।

प्रथम एवं द्वितीय महायुद्ध पिछली सदी की घटना हैं, विश्व खासकर यूरोप और अमेरिका अब तक इस हादसे से उबर नहीं पाया है। दोनों काल पर खूब फिल्म बनी हैं। नाजी कु–काल पर विभिन्न देश में अलग–अलग भाषाओं में कई फिल्म बनी हैं। 'अटोनमेंट', 'डाउनफाल','द रीडर', 'काउंटरफियेट्स', 'इडा' और न जाने कितनी फिल्में बनी हैं और आगे भी बनेगी। हिटलर कालीन क्रूरताओं पर बनी फिल्मों पर मेरी पूरी एक पुस्तक ('नाजी यातना शिविरों की त्रासद गाथा', वाणी प्रकाशन) है। इस काल की मात्र दो बायोपिक का जिक्र करूँगी।

होलोकास्ट भुक्तभोगी पोलांस्की महान पियानोवादक स्पीलमैन ब्लैडीस्लाव के संस्मरण पर 'द पियानिस्ट' (2002) फिल्म बनाते हैं। फिल्म में नायक (एड्रियन ब्रोडी), 1939 में पोलैंड जर्मनी द्वारा अधिकृत वार्सा में सारे समय अकेला भटकता है। कुछ लोगों की कृपा से उसका जीवन बचता है। वह संयमी, निर्लिप्त व्यक्ति है, जिसका जीवन इस दुर्घष समय में भाग्य से बचा रहता है। फिल्म ब्लैडीस्लाव स्पीलमैन लिखित संस्मरण पर आधारित है। स्क्रीनप्ले रोनाल्ड हारवुड ने लिखा और पावेल एडलमैन की फोटोग्राफी अधिकाँश धूसर–भूरे रंग से उजाड़ घेटो को साकार करती है। चाक्षुष रूप से स्तंभित करती फिल्म जब आगे बढ़ती है, तो भूरा प्रमुख बन बैठता है। जब नाजी वार्सा छोड़ने लगते हैं, तब सूर्य की रौशनी नजर आती है। स्पीलमैन जर्मन कमांडर के लिए पियानो बजाता है, उसके ऊपर एवं पियानो पर रौशनी पड़ती है, जीवन की थोड़ी उम्मीद बँधती है। पोलांस्की ने एक सैनिक स्थल पर सेट का निर्माण कर फिर उसे डायनामाइट से उड़ा कर भग्न घेटो का दृश्य तैयार किया था। दुःख निर्देशक रोमन पोलांस्की का पीछा बचपन से कर रहा है, यातना शिविर से बच निकले पोलांस्की 1961 में कम्युनिस्ट शासन के दमन से निकल भागे। 1969 में उनकी पत्नी अभिनेत्री शरोन टेटे और उनके अजन्मे बच्चे की हत्या कर दी गई। जब फिल्म लोकेशन के लिए वे क्राकाऊ गए तो उनकी स्मृति पुनः जीवित हो गई।

पूरी शूटिंग वार्सा, प्राग तथा स्टूडियो में हुई। उजाड़ घेटो और एकाकी स्पीलमैन का दृश्य दुनिया से उसके कटे होने और नाजी द्वारा तहस–नहस दुनिया को फिल्म बड़ी खूबसूरती (!) से दिखाती है।

वार्सा पर जब पहली बार 1939 में बम वर्षा होती है, स्पीलमैन पोल रेडियो स्टेशन पर लाइव संगीत शापिन का संगीत प्रस्तुत कर रहा था। आशावादी को विश्वास है, शीघ्र यह नाजी अत्याचार समाप्त हो जाएगा, सब पहले की तरह सामान्य हो जाएगा। ब्लैडीस्लाव और उसके परिवार को यातना शिविर जाने वाली ट्रेन पर चढ़ने का आदेश दिया जाता है। एक मित्र की सहायता से ट्रेन पर चढ़ने और मृत्यु के मुँह से वह बच निकलता है। इस बच निकलने के बाद का उसका जीवन, अपराध ग्रंथी जनित जीवन जानने के लिए डाक्यूड्रामा 'द पियानिस्ट' देखनी होगी। नाजी का सिस्टेमेटिक दमन–शोषण शिविरों के बाहर भी जारी था। उस दमन का बड़ी बारीकी, कुशलता और विस्तार से चित्रण इस फिल्म में है।

स्पीलमैन परिवार मृत्यु के मुँह में जा चुका है, वह बच रहा है, उसके भीतर की उसका पीछा लगातार करती है। जीवित रहने के लिए उसे तरह–तरह की कठिनाइयों से गुजरना होता है, भय–दहशत, भूख–प्यास–बीमारी का सामना करना पड़ता है। कुछ गैर यहूदी लोग उस पर दया करते हैं, स्पीलमैन के प्राण पियानो में बसते हैं, जहाँ उसने शरण ली है, वहाँ पियानो है पर वह उसे बजा नहीं सकता है। बजाएगा तो उसके साथ कई अन्य जानें जाएँगी। खूबसूरत अंगुलियाँ पियानो बजाने को तरसती हैं। पियानोवादक स्पीलमैन मात्र एक दर्शक, एक साक्षी। युद्धोपरांत स्पीलमैन पुनः पियानो बजाता है।

फिल्म बन कर समाप्त होने के पूर्व 80 वर्ष की उम्र में वास्तविक व्यक्ति की मृत्यु हुई। फिल्म में अभिनेता एड्रियन ब्रोडी के चेहरे और उसकी आँखों का भाव मिल कर फिल्म को दर्शक के लिए अनुभव नहीं, अनुभूति बना देते हैं। वह मौखिक से अधिक भावात्मक तरीके से अपना कथ्य संप्रेषित करता है। कोई आश्चर्य नहीं कि इस फिल्म को सारे उत्तम पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए। 57 पुरस्कार में तीन आस्कर

(सर्वोत्तम निर्देशक, सर्वोत्तम अभिनेता, सर्वोत्तम स्क्रीनप्ले) शामिल हैं।

पुरस्कार समारोह में स्पीलमैन के पुत्र एंड्रेज स्पीलमैन उपस्थित थे। अभिनेता एड्रियन ब्रोडी के माता–पिता समारोह में आए थे, सब खुशी से रो रहे थे। ये सम्मान द्वितीय विश्वयुद्ध के शिकार हुए लोगों केलिए समर्पित थे। उनके बेटे ने पत्रकारों को बताया, हमारे परिवार, मेरे पिता की कहानी अकादमी सपोर्ट से बहुत सम्मानित और गदगद हैं। साठ साल बीत चुके थे मगर वे कुछ भूले नहीं थे। एड्रियन ब्रोडी को नामांकन के बावजूद गोल्डन ग्लोब न मिला। सुखद है, इस साल 2025 को फिल्म हिटलर काल पर बनी 'द ब्रुटालिस्ट' हेतु यही पुरस्कार उन्हें मिला। मानवता पर विश्वास जमाती फिल्म 'द पियानिस्ट' संगीत की शक्ति, जिजीविषा एवं स्वतंत्रता के मूल्य का दस्तावेज है।

निकी कारो की ठोस–ब्लीक फिल्म 'द जूकीपर्स वाइफ' (2017, जिसका मूल पोलिश शीर्षक 'एजिल' अर्थात असाइलम या सैंचुरी है) में वार्सा के जू डायरेक्टर जैन जाबिन्स्की (जोहान हेल्डेनबर्ग) एवं उसकी पत्नी अंटोनिया (जेसिका चौस्टैन) प्रतिकार दस्ते में काम करते हुए करीब 300 यहूदियों की जीवन रक्षा करते हैं। फिल्म में नाजी आक्रमण के बाद चिड़ियाघर बंद कर, नाजी विशिष्ट जीव–जन्तु प्रयोग करने के लिए उठा कर ले जाते हैं। चिड़ियाघर सूअर बाड़े में बदल जाता है।

इतिहास पुरुष दृष्टिकोण से लिखा जाता है, दो घंटे से कुछ ऊपर की यह फिल्म स्त्री के उल्लेखनीय योगदान को दिखाती है। न्यूजीलैंड की निकी कारो ने हालीवुड के पुरुष वर्चस्व को तोड़ा है, अपना झंडा गाड़ा है। अकेले 100 मिलियन डालर की फिल्म बनाने वाले कुछ ही निर्देशक हैं, महिला निर्देशक निकी कारो उनमें से एक हैं। एंटोनिया जाबिन्स्की की डायरी पर डायने एकरमैन ने 'जू कीपर्स वाइफ' नामक किताब लिखी, फिल्म की शुरुआत बहुत खुशनुमा होती है। चिड़ियाघर का फाटक खोलने के पहले ही बाहर चिड़ियाघर घूमने आए लोग जमा हैं। ऊँट–शावक साइकिल चलाती एंटोनिया के साथ रेस लगाता है। हथिनी कठिन प्रसव में है, एंटोनिया शिशु को बाहर निकालने में कामयाब रहती है, सारे समय हाथी को भी शांत रखती है, वह मनुष्यों को भी शांत रखना जानती है।

नाजियों के आते सब उलट–पुलट जाता है, एंटोनिया का निजी जीवन भी। पता चलता है, यह सुंदर, कोमल स्त्री भीतर से दृढ़ है। नाजी आफीसर डा. लुज हेक (डैनियल ब्रुल) की आँख एंटोनिया पर है। वह परिवार की सुरक्षा के लिए उसे बरदाश्त करती है। पति को ये हरकतें नागवार गुजरती हैं। डा. लुज हेक पशु प्रजनन के अपने शोध के लिए वार्सा में स्थाई आफिस बनाता है। वह क्रूर है, चिड़ियाघर के पक्षी का शिकार करता है, उनमें भुस भरवाने का आदेश देता है।

जाबिन्स्की ये यहाँ दो तरह के जीव पल रहे हैं। सूअर, घूम–फिर सकते हैं, मनुष्य न तो जोर से बोल सकते हैं न खाँस–छींक सकते हैं। अंटोनिया इसे 'ह्यूमन जू' की संज्ञा देती है। यहाँ नाजी बलत्कृत शिकार बच्ची उर्सुला (इजरायली अभिनेत्री शीरा हास) है। फिल्म भय, दहशत, आशंका और दर्द से भरी हुई है। अंत में नाजी घेटो में आग लगा कर बचे–खुचे यहूदियों को समाप्त कर डालते हैं। जैन जाबिन्स्की की गर्दन में गोली लगती है, वह गिरफ्तार कर लिया जाता है। एंटोनिया ने एक बच्ची को जन्म दिया है, ये लोग उसका नाम टेरेसा रखते हैं। हेक एंटोनिया का बलात्कार करना चाहता है। वह उसके चंगुल से बच निकलती है। हेक बेटे पर आक्रमण करता है, उसे बंदूक की नोंक पर रखता है। एंटोनिया हेक के परीक्षण हेतु रखे साढ़ को खोल, जंगल में भागा देती है। दुष्टता और मानवता का संघर्ष चलता रहता है।

भारतीय और युक्रेन माता–पिता की संतान अमेरिका में रह रहे प्रयोगधर्मी एंड्रिज पारेख की सिनेमाटोग्राफी, डेविड कौलसन की संपादित एवं हैरी ग्रेसन–विलियम्स के संगीत से सजी फिल्म किताब के करीब रहते हुए भी काफी हिस्सों को छोड़ती चलती है। अभिनेत्री जेसिका चौस्टैन के अनुसार, यह उनके लिए भावात्मक–महत्वपूर्ण फिल्म है। आदमियों के युद्ध में निरपराध पशुओं का वध नाजी और मित्र सेना दोनों करते हैं। वार्सा का पुनर्निर्माण होता है। एंटोनिया बचे–खुचे लोगों के साथ फिर से चिड़ियाघर बनाने में जुट जाती है। जब जैन से पूछा गया उसने ऐसा क्यों किया? उसका अर्थपूर्ण उत्तर था, 'मैंने केवल अपनी ड्यूटी की अगर आप किसी की जिंदगी बचा सकते हैं, तो इसकी कोशिश करना आपका कर्तव्य है।'

आधुनिक जीवन शैली ने हमारा आँगन, छत, बाग, संयुक्त परिवार सब छीन लिया है। शहरी जीवन, एकल परिवार, फ्लैट संस्कृति ने अजनबीपन को जन्म दिया है। नई–नई बीमारियाँ पैदा हुई हैं। युवा रहते परेशानियाँ हैं, उम्र बढ़ने के साथ परेशानियाँ बढ़ती हैं, वृद्धावस्था अपने आप में परेशानी है। फिल्म अपने समय और समाज को दर्ज करती है। अतः यह सब इस सदी की फिल्मों में दीखता है।

रूसी भाषा की फिल्म 'फादर एंड सन' इंग्लिश में उपलब्ध है। शुरु से अंत तक फिल्म संबंधों की अस्पष्टता

को बनाए रखती है, इसी कारण बहुत लोग इसे देखना पसंद नहीं करेंगे। यदि आप सिने–प्रेमी अथवा सिने–अध्येता हैं, इसे अवश्य देखें। सर्गेई पोटपालोव की लिखी इस फिल्म में क स्टिंग के साथ ही भ्रम पैदा होने लगता है, शुरुआत में हम धुंधलके में किसी की सांसों के भारीपन और दो पुरुषों को आपस में गुंथे हुए देखते हैं। दर्शक इसे यौन क्रीड़ा समझता है, जब वे नजदीक से दीखते हैं, पता चलता है, एक ने दुःस्वप्न देखा है, दूसरा उसे संभालने–शांत करने का प्रयास कर रहा है, सान्त्वना दे रहा है। दृश्य और स्पष्ट होता है, दर्शक पाता है, पिता पुत्र को दुरूस्वप्न से जगाने, उसे शांत करने की कोशिश कर रहा है। इसी प्रक्रिया में पिता ने पुत्र को जकड़ रखा है, उसे झकझोर रहा है।

83 मिनट की मनोवैज्ञानिक संबंधों की पड़ताल करती फिल्म में पिता (एंड्रे सेचिनिन) का कोई नाम नहीं है। बेटे का नाम एलेक्सी (एलेक्से नेमिशेव) है। एलेक्सी की माँ गुजर चुकी है। पिता–पुत्र किसी शहर के एक अपार्टमेंट में बहुत ऊँचाई पर रह रहे हैं। बेटा कहता है, 'एक पिता का प्रेम सूली पर चढ़ाता है और एक प्यारा बेटा स्वयं को सूली पर चढ़ने देता है'। उनका संबंध सिर चकराने वाला, उत्सव मनाता हुआ है। निर्देशक दो लोगों के निकट संबंध को सिने–बैले के रूप प्रस्तुत कर रहा है। पर कास्टिंग के मुद्दे पर निर्देशक चूक गया है, फिल्म में बेटे को 20 का बताया गया है, पिता को उसके चौथे दशक में। कई बार वे पिता–पुत्र न लग कर भाई–भाई लगते हैं अथवा दोस्त। सुंदर पुत्र यदि 22–24 साल का लगता है तो पिता 26–28 साल का ऊर्जावान खूबसूरत देहयष्टि का युवक दीखता है। न ही मेकअप के द्वारा इस फासले को पाटने का प्रयास किया गया है। इससे फिल्म की आधिकारिकता बाधित होती है।

ईडिपल काम्प्लेक्स–कान्फ्लिक्ट से जुड़ी फिल्म में एलेक्सी की प्रेमिका चुप नहीं रहती है। नीचे सड़क पर खड़े लड़के से अपार्टमेंट की बालकनी पर खड़ी वह कहती है, 'सूली चढ़े प्रेम का मतलब है, तुम समकक्ष नहीं हो सकते हो। 'फिल्म में यह बेनाम लड़की (मरीना जसुखिना) न भी होती तो फर्क नहीं पड़ता। फिल्म दोनों की शारीरिक नजदीकी नहीं दिखाती है, पर लड़की को शिकायत है, एलेक्सी उससे अधिक अपने पिता को प्यार करता है। लड़की द्वितीया बनने को राजी नहीं है। अंततः वह संबंध तोड़ अन्य के साथ चली जाती है। पिता–पुत्र का भावात्मक संबल एक दूसरे को सुरक्षा प्रदान करता है। विधुर पिता दुःख, असुरक्षा से घिरा हुआ है। बेटे को छोड़ कर दूसरी जगह जाने और अपनी जिंदगी अलग जीने की कल्पना नहीं कर पा रहा है। बिना शर्ट के खुले में काम करने की आदत वाले पिता को बेटे के चेहरे में अपनी पत्नी की तस्वीर नजर आती है, वह कहता है, तुम बहुत कुछ अपनी माँ जैसे हो। बेटा यह भूमिका नहीं निभाना चाहता है, वहाँ से चला जाना चाहता है।

बहुत खूबसूरत शहर की यात्रा, स्वप्न शृंखला फिल्म को वायवी स्पर्श दे एक ऊँचाई पर पहुँचाती है। पिता–पुत्र लड़ते हैं, आलिंगन करते हैं, दूर जाते हैं, नजदीक आते हैं। फिल्म अक्सर कहावत जैसे वाक्य 'पिता का प्रेम...' का प्रयोग करती है। निर्देशन ने कैमरे की सहायता से प्रकाश, मौसम और स्थान को जीवंत कर दिया है। फिल्म में mise-en-scene का बहुत खूबसूरत प्रयोग हुआ है। कुछ सीन फ्रेम में जड़े फोटोग्राफ जैसे लगते हैं। दोनों पुरुष पात्र अपार्टमेंट के रूफट पापर रहते हैं। दो बिल्डिंग के बीच संकरे पटरे का पुल है। दोनों इस पर ऐसे चलते हैं, मानो आराम से घर के बरामदे में चल रहे हों। वहीं खेलते हैं, मानो ऊँचाई पर नहीं, किसी मैदान में हों। इस जटिल संबंधों वाली फिल्म 'फादर एंड सन' का कथानक वर्तुल और रैखकीय दोनों है, कुछ लोग मानते हैं कि यह 'प्लाटलेस' है। कई दृश्य क्लोजअप्स में हैं।

फिल्म की शूटिंग लिस्बन में हुई है, जिसमें तकरीबन हर दृश्य में पात्रों के पीछे ज्योमैट्रिकल पैटर्न की बिल्डिंग दिखाई गई हैं, इसीलिए इसे किसी ने 'आर्किटेक्चरल' फिल्म कहा है। इमारतें के चाक्षुष शैली का सार हैं। फिल्म में घर के भीतर की साज–सज्जा और बाहर के दृश्य (सड़क, ऊँचे–ऊँचे मकान) का विशेष सावधानी से संयोजन किया गया है जो फिल्म के आगे बढ़ने के साथ और विस्तार पाता है। घर के भीतर दीवाल पर कई चित्र हैं ये चित्र आयताकार फ्रेम में मढ़े हुए हैं। पुराने फैशन के रेडियो को घर की आकृति में ही प्रस्तुत किया गया है, जहाँ बटन को भी खास ढ़ंग से पेश किया गया है। छत पर कुकुरमुत्ते की आकृति की चिमनी है, उसे भी आप प्रतीक मान सकते हैं। लैंडस्केप्स, बिल्डिंग्स, चेहरे और शरीर सबकी फोटोग्राफी एलैक्जेंडर बरो ने बहुत कुशलता, सावधानी और प्रेम के साथ की है। फिल्म में ड्रीम सिक्वेंस केलिए डिस्टोर्टिंग लेंसेस का प्रयोग किया गया है ताकि सारा दृश्य विकृत/बेढ़ंगा, हिलता–डुलता दिखाई दे। संवाद फुसफुसाहट में हैं। एंड्रेय सिग्ले का धीमा संगीत फिल्म के तंद्रापूर्ण वातावरण को और आलस्यपूर्ण बना देता है। पूरी फिल्म सीपिया टोन में फिल्माई गई है। इस दमघोटूँ फिल्म की खूबसूरत, कलात्मकता, इसकी चौंधियाने वाली संदिग्धतापूर्ण आकृतियाँ एक बार देखनी चाहिए।

उम्र के प्रभाव में स्मृति का ह्रास होता है, यह न केवल उस व्यक्ति के लिए परेशानी का कारण बनता है, वरन आसपास के लोगों के लिए भी कठिनाई उत्पन्न करता है। दु:खदायी, लाचारी की पराकाष्ठा भावात्मक दोहन करती है। व्यक्ति के भीतर भयंकर संघर्ष चल रहा होता है, वह मानसिक तथा भौतिक दोनों रूप से परेशान है। निर्देशक फ्लोरियन जेलर की 'द फादर' (2020) डेढ़ घंटे की फिल्म में दर्शक कभी दया से भर उठता है, कभी दहशत से काँप उठता है, कभी खुद भ्रमित हो उठता है। विभिन्न भावनाओं की अनुभूति संभव हो सकी है, कहन के शक्तिशाली ढ़ंग से, अभिनय कुशलता से, कैमरे के कमाल से।

फिल्म 'द फादर' का पिता एन्ट नी (एन्ट नी होपकिन्स) अपनी उम्र के आठवें दशक में कठिन परिस्थिति से जूझ रहा है। उसका मिजाज हर पल बदलता रहता है। चीजें जगह पर रखने का आदी एन्टनी अब रख कर भूल जाता है। बेटी ऐन (ओलिविया कोलमैन) उसकी चिंता करती है, वह उसको नहीं पहचानता है, उसे याद नहीं है कि बेटी का तलाक हो चुका है। समझ नहीं आता है, क्यों बेटी ब्रिटेन छोड़ कर फ्रांस जाने वाली है, जहाँ के लोगों की भाषा भिन्न है। लंदन के आलीशान फ्लैट में सारी भौतिक सुविधाओं के बावजूद वह परेशान है। उसे बेटी के बायफ्रेंड 'अजनबी' पाल (मार्क गेटिस) का फ्लैट में आना अच्छा नहीं लगता है। बीच–बीच में अतीत–वर्तमान सटीक हो जाता है, वह प्रसन्न हो नाचता है, टैप डान्स करने लगता है, प्रशंसा– सकारात्मक टिप्पणियाँ करता है। जीवन और वर्तमान उसकी मुट्ठी से रेत की तरह सरकता रहा है। उसे याद नहीं कि उसकी एक बेटी लूसी दुर्घटना में मर चुकी है। उसे लूसी की खून सनी लाश दीखती है। उसे सुबह शाम का फर्क नहीं पता है। जब भी उसके कथन को ठीक किया जाता है, वह 'आफ कोर्स' कह कर बात टालता है, स्पष्ट दीखता है, वह परेशान है, अपनी बात को सही मान रहा है।

फ्लोरियन जेलर ने अपने ही नाटक को क्रिस्टोफर हैम्टन के साथ मिल कर अपनी पहली फिल्म का स्क्रीनप्ले तैयार किया है। सारी फिल्म कुछ पात्रों को लेकर एक लोकेशन पर फिल्माई गई है। आस्कर विजेता एन्थनी होपकिन्स के अकूत अभिनय क्षमता को आप भुला नहीं सकते हैं। इसीलिए 'वैनिटी फेयर' पत्रिका उन्हें 'ए टावरिंग पीस आफ एक्टिंग' कहती है। इस फिल्म के लिए उन्हें सर्वोत्तम अभिनेता के रूप में आस्कर के साथ अन्य कई पुरस्कार प्राप्त हुए। उस साल का आस्ट्रेलियन एकेडमी आफ सिनेमा एंड टेलिविजन आर्ट्स का पुरस्कार पाने वाली अभिनेत्री ओलिविया कोलमैन का अभिनय चकित करता है। फ्लोरियन जेलर तथा क्रिस्टोफर हैम्टन को संयुक्त अ स्कर प्राप्त हुआ। पात्रों के विभिन्न भावों को कैमरे से बेन स्मिटहार्ड ने पकड़ा है औरभावानुकूल संगीत का श्रेयइटैलियन पियानिस्ट लुडोविको एनाओडी को जाता है। फिल्म देखते हुए और उसके बाद आपके मन में 'डिमेन्शिया' को लेकर तमाम प्रश्न उठते हैं। लेकिन इन प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं। बस ऐसी बीमारी के शिकार व्यक्ति के आसपास रह कर हर हाल में ऐनी की तरह उसकी देखभाल की जा सकती है। जिंदगी बहुत कीमती है। उसका छीजना बड़ा कष्टदायक होता है।

कुलीन संगीत शिक्षक द्वै जार्जस (जीन–लुई ट्रिन्टिनौट) और एन (इमैनुअल रीवा) भी अपने आठवें दशक में चल रहे हैं। उनकी संगीतज्ञ बेटी इवा (इसाबेला हपर्ट) अपने परिवार के साथ ब्रिटेन में रहती है। फिल्म शुरु होती है, अग्निशामक विभाग कर्मचारियों द्वारा पेरिस के एक अपार्टमेंट के दरवाजे को तोड़ने, नाक पकड़े घर में प्रवेश करने से। और दर्शक देखता है, बेडरूम में एक खूबसूरत वृद्धा फूलों से सजी पड़ी हुई है। फिल्म क्राफ्ट के मास्टर, अज के एक सर्वाधिक जीनियस निर्देशक माइकल हेनके की 2012 की यथार्थवादी संवेदनशील फ्रेंच फिल्म 'अमोर' (प्रेम) में जार्जस और एन संगीतज्ञों के रूप में एन के एक छात्र के प्रोग्राम से गदगद लौटे हैं। बुढ़ापे में आप अकेले होते चले जाते हैं। आपने किसी से प्रेम किया है, वह उम्र के साथ स्ट्रोक का शिकार हो जाए, बर्फ–मूर्ति बन जाए, तो आप क्या करेंगे? साथी का एक तरफ का शरीर लाचार हो जाए, आपरेशन और नुकसान कर जाए, नर्स मनमान करे, आप क्या करेंगे?

खास मौकों पर क्लोजअप्स का प्रयोग करती, दोनों पात्रों के आंतरिक उजास को दिखाती आत्मकथात्मक फिल्म का स्क्रीनप्ले निर्देशक ने अपनी 21 अन्य फिल्मों की भाँति स्वयं लिखा है। अंतरराष्ट्रीय सहयोग से बनी 'अमोर' में पति बहुत मजबूत पात्र है, उम्र के कारण बहुत कुछ करने में समर्थ न होते हुए पत्नी केलिए बहुत कुछ करता है। बेडपेन साफ करता है, डायपर्स बदलता है, बेडसोर में मलहम लगाता है। पत्नी असह्य कष्ट में है, पति के कष्ट कम नहीं हैं। वह बस यही चाहता है, पत्नी शाँतिपूर्ण तरीके से दुनिया छोड़े। कोई उपाय न देख वह इसका जतन करता है। भावनाओं को चुनौती देती, प्रेम, मानवता, नैतिकता के प्रश्नों से लैस सार्वभौमिक विषाद की फिल्म 'अमोर' ने 84 पुरस्कार जीते जिसमें एक अ स्कर शामिल है। यदि दो मंजे हुए अभिनेता न होते तो इन पात्रों को सजीव करना असंभव था।

सारा विश्व प्रवासियों–शरणार्थियों की समस्या से परेशान है। प्रवासियों की अपनी समस्याएँ हैं। गैरकानूनी प्रवास के अपने जोखिम और परिणाम होते हैं। एक बार इस चक्कर में पड़ने पर इससे निकलना कठिन है। 2002 में स्टीफन फ्रीअर्स ने लंदन में दो गैरकानूनी प्रवासियों पर केंद्रित 'डर्टी प्रेटी थिंग्स' फिल्म बनाई। नाइजीरियन ओक्वे (चिवेटेल एजिओफोर) दिन में टैक्सी चलाता है, रात में होटल में काम करता है। होटल में टर्की से आई सेनाय (आड्री टौटो) भी काम करती है। एक रात होटल की हुकर जूलिएट (सोफी ओकोनेडो) ओक्वे से कहती है, कमरे का टायलेट जाम है। ओक्वे जाम खोलने का प्रयास करते हुए पाता है कि टायलेट में एक दिल फँसा हुआ है। वह अपने बास जुआन जिसे उसकी पीठ पीछे सब स्निकी कहते हैं को बताता है तो उसे उपदेश मिलता है, 'अपने काम से काम रखो, यह होटल है यहाँ लोग रात को आते हैं, गंदे काम करते हैं, उनकी बात नहीं की जाती है।' धमकी देते हुए उसका पूरा नाम, उसके देश का नाम, पुलिस से बात करने की बात पूछता है। ओक्वे चुप रहता है। बास उसे घूस देना चाहता है, वह नहीं लेता है।

ओक्वे जैसे गैरकानूनी प्रवासी दूसरे देशों की अर्थव्यवस्था में योगदान करते हैं। प्रशासन जानबूझ कर आँख मूँदे रहता है। होटल का काम इन्हीं से चलता है, मूलवासी होटल के ग्राहक होते हैं या आफीसर। गैरकानूनी प्रवासी सदा भयभीत रहता है, उसे गिरफ्तार कर कभी भी डिपोर्ट किया जा सकता है। भिन्न देशों, भिन्न भाषा के प्रवासी एक–दूसरे को स्वीकार करते हैं। ओक्वे डबल ड्यूटी के लिए खुद को जगाए रखने हेतु जड़ी–बूटी खाता है। हर आदमी थोड़ी ऊपरी आ–मद–नी के चक्कर में है। होटल का किचेन बंद होने पर नगद ले गार्ड ग्राहकों को खाना पहुँचाता है, बाद में ओक्के भी यह करने लगता है। होटल में कुछ गलत होता है, इस शक की बिना पर ओक्वे छान–बीन में जुटता है। उसका दोस्त गुओ यी (बेनेडिक्ट वान्ग) अस्पताल के लाशघर में काम करता है।

बीबीसी फिल्म्स एवं सेलाडोर फिल्म्स द्वारा प्रड्यूस फिल्म 'डर्टी प्रेटी थिंग्स' (2002) के होटल का गार्ड (ज्लाट्को बुरिस) एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। स्टीव नाइट की लिखी फिल्म हमें झटका देती है। दर्शक अपने पूर्वाग्रह के साथ फिल्म देखता है। दृश्य है, लाइन से खड़े टैक्सी ड्राइवर ओक्वे के आते ही अपनी–अपनी पैंट्स की जिप खोलने लगते हैं, दर्शक को लगता है, वह ओरल सैक्स दे रहा है। बाद में पता चलता है, ओक्वे एक डाक्टर है, साथी टैक्सी ड्राइवरों का मैडिकल मुआयना कर रहा है। ओक्वे, सेनाय की आँखें पारदर्शी और मासूम है, ठीक उनके व्यक्तित्व की भाँति। ओक्वे की आँखों में मूक दर्द भरा है, जो देश में छूट गई बेटी को लेकर है।

नाइजीरिया में एक प्रशिक्षित डाक्टर ओक्वेपर पत्नी की हत्या का आरोप है, वह वहाँ से निकला है। अपने मूल्यों के कारण अपनी पत्नी के प्रति ओक्वे वफादार है, टर्की की मुस्लिम सेनाय से संबंध नहीं बनाता है। सेनाय किसी तरह अमेरिका जाना चाहती है, जब आफीसर उसके पीछे पड़ जाते हैं, उसका होटल का काम छूट जाता है, वह एक फैक्ट्री में काम करने लगती है। वहाँ भी उसे चैन से नहीं रहने दिया जाता है। उसके पास पासपोर्ट नहीं है।

बास स्निकी अंग बेचने का गैरकानूनी धंधा करता है। वह खुद प्रशिक्षित नहीं है, अनगढ़ क्रूर तरीके से किडनी निकाल कर बेचता है, बदले में नकली पासपोर्ट उपलब्ध कराता है। स्निकी एक डाक्टर के रूप में ओक्वे को लालच दे कर सहायता लेना चाहता है। सेनाय पासपोर्ट के बदले में स्निकी को किडनी देने को तैयार हो गई है, यह जान कर ओक्वे आपरेशन को राजी हो जाता है। आपरेशन के पहले चालाकी से वह अपना और सेनाय का पासपोर्ट रखवा लेता है।

एक दृश्य में ओक्वे कहता है, 'तुम देखना नहीं चाहते हो, हम तुम्हारी कैब ड्राइव करते हैं, रूम साफ करते हैं और तुम्हारा काक सॅक करते हैं'। विडम्बना है, आदमी जहाँ रहना चाहता है, वहाँ चैन से नहीं रह पाता है। गैरकानूनी प्रवास का नतीजा भयंकर–जोखिम भरा जीवन, गिरफ्तारी, डिपोर्टेशन से ज्यादा जान का खतरा है। फिर भी कई लोग जान की परवाह नहीं करते हैं। 'डर्टी प्रेटी थिंग्स' आँख खोलने वाली फिल्म है।

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न 43 फिल्म के स्पैनिश निर्देशक पेड्रो एल्मोदोवो ने कई भाषा में फिल्म बनाई हैं। इस सदी में वे 13 फिल्में बना चुके हैं। 'पेन एंड ग्लोरी', 'द स्किन आई लिव इन', 'टाक टू हर', 'बैड एडुकेशन', 'वोल्वर', 'द रूम नेक्ट डोर', 'पैरलाल मदर्स', 'जुलिएटा' आदि उनमें से कुछ फिल्में हैं। आत्मकथात्मक फिल्म बनाने वाले पेड्रो एल्मोदोवो रंगारंग, फिल्मों द्वारा अस्मिता, इच्छाओं, लैंगिकता एवं अपनी अनोखी स्टोरीलाइन हेतु जाने जाते हैं। उन पर बहुत लिखा गया है, अतः उन्हें छोड़ती हूँ।

साउथ कोरिया से हमें खूब अच्छी फिल्में देखने को मिलती हैं। शहर की उच्च वर्ग की आबादी से कुछ दूर सहायकों की आबादी बसी होती है। दोनों एक–दूसरे पर आश्रित होते हैं। उच्च वर्ग का काम निम्न वर्ग के बिना नहीं चल सकता है। निम्न वर्ग का गुजारा उनके मालिकों के बगैर नहीं हो सकता है। इसी को दक्षिण कोरिया के